***Rivista*, 2017, 1, 1-24**
Published Online: June 25, 2017 (http://inscribepublications.com/journal/rivista)
http://doi.org/10.26476/rivista.2017.01.01-24

दण्ड विधान के प्राचीन और वर्तमान परिप्रेक्ष्य: एक अध्ययन

अर्चना जैन[1], मनोज राजगुरु[2]

[1]प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, विद्या भवन रुरल इंस्टीट्यूट, उदयपुर, भारत 313001

[2]प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, विद्या भवन रुरल इंस्टीट्यूट, उदयपुर, भारत 313001

Email: agarchanajain27@gmail.com, rajguru_manoj1@rediffmail.com

Received June 8, 2017; Revised June 20, 2017; Accepted June 25, 2017

सार

मनुष्य हर युग में सामाजिक प्राणी होते हुए भी कई बार समाज विरोधी कार्य भी करता है। इन कार्यों की गणना अपराध के रुप में होती है। इसी कारण समाज ने अपने प्रत्येक सदस्य की सर्वविध सुरक्षा एवं उनके हितार्थ विविध नियम एवं उपनियम बनाए है। जिन्हें संतान्य भाषा में कानून अथवा विधि कहते हैं। इन्हीं से समाज में सर्वथा सुख-शान्ति, सुव्यवस्था बनाने का प्रयास किया जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अपराध की अवधारणा एक समाज से दूसरे समाज में तथा एक युग से दूसरे युग में परिवर्तित होती रही है। इसी अनुरुप दण्ड व्यवस्था में भी बदलाव दृष्टिगोचर होता है। किसी भी समाज और संस्कृति के इतिहास का वर्तमान और भविष्य से गहरा सम्बन्ध होता है। इसी संदर्भ में प्राचीन भारतीय समाज में अपराध के संदर्भ में प्रयुक्त दण्ड व्यवस्था जो प्राचीन साहित्यों में उल्लेखित हैं। यदि तत्कालीन व्यवस्था के अनुरूप प्रावधान वर्तमान में भी अपनाये जाए तो संस्कृति की रक्षा संभव है और समाज में अपराधों की रोकथाम के लिए प्राचीन अनुभवों का लाभ भी लिया जा सकता है। किंतु यह भी जरुरी नहीं कि दण्ड़ संबंधित प्राचीन विधान और प्रावधान वर्तमान में उपयोगी हो। इसी दृष्टि से प्रस्तुत आलेख में प्राचीन साहित्य में उल्लेखित दण्ड व्यवस्था के साथ वर्तमान दण्ड व्यवस्था के तुलनात्मक संदर्भों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है। आलेख अपराध और दण्ड की सैद्धांतिकी के साथ ही, प्राचीन और आधुनिक काल में प्रचलित दण्ड व्यवस्था पर प्रकाश डालता है और अंततः प्राचीन

दण्ड व्यवस्था की वर्तमानकालिक प्रांसगिकता को रेखांकित करता है।

संकेतशब्द अपराध, दण्ड, नियम, संहिता, प्रावधान, प्रासंगिक

1. प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। ज्यों-ज्यों मानव जीवन सभ्य एवं समाजिक होता गया, त्यों-त्यों उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गई, साथ ही सम्पत्ति के प्रति मोह में भी वृद्धि हुई। इसी मोह ने विवाद एवं लड़ाई-झगड़ों को जन्म दिया। जिससे अपराध की पृष्ठभूमि निर्मित हुई। अपराध के शमन के लिए ही दण्ड व्यवस्था का भी प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व की अपराध के संदर्भ में प्राचीन और वर्तमान के प्रावधानों की तुलना करें, संक्षेप में अपराध और दण्ड का सैद्धांतिक अर्थ जानना आवश्यक है।

अपराध को अंग्रेजी में 'क्राइम' (Crime) कहते हैं। 'क्राइम' लैटिन भाषा के शब्द 'क्रिमेन' (Crimen) से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ निर्णय देना होता है। ग्रीक भाषा में 'क्रिमेन' शब्द का अर्थ अलगाव है और संज्ञा के रूप में यह किसी निर्णय का बोध कराता है।

अपराध की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। मानव समाज में हमेशा परिवर्तन होते आए हैं। परिवर्तनशील नैतिक मूल्यों, सामाजिक आवश्यकताओं एवं गतिशील समय के साथ-साथ अपराधों के सम्बन्ध में भी मानवीय धारणायें बदलती रही हैं। सामाजिक दृष्टि से यदि कोई मनुष्य ऐसा कार्य करता है जो समाज या व्यक्ति विशेष के लिए हानि पहुंचाने वाला हो तो ऐसे कर्म को अपराध की संज्ञा दी जाती है। वैदिक समाज में ऋत के विपरीत कार्य को दैविक और सामाजिक अपराध एवं पाप माना गया है। अपराध की श्रेणी में ऋत, दैवीय इच्छा और सदाचार के विपरीत किये गए कर्मों को रखा जा सकता है, जिसका उल्लेख वेद भी करते हैं। कालान्तर में वेद विपरीत कार्य, अपराध माने गये। तत्कालीन जीवन में ऐसे समाजों का संकेत है जो ऋत की विधि, यज्ञीय जीवन, वैदिक भाषा एवं सदाचरण में विश्वास नहीं करते थे। उन्हें अनृत, मृध्रवाच अश्रद्ध, अयज्ञ, अपव्रत आदि कहा गया है।

आधुनिक काल में अपराध की परिभाषा विविध प्रकार से दी गई है। कुछ विद्वानों ने अपराध को केवल कानूनी दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। इलियट और मेरिल के अनुसार, ''अपराध कानून द्वारा निषिद्ध (वर्जित) वह कार्य है, जिसके बदले में उसके कर्त्ता को मृत्यु, जुर्माने, कारावास, काम-घर, सुधार-गृह या जेल के द्वारा दण्डित किया जा सकता है [1]।"

इस प्रकार अपराध एक ऐसा कार्य है जो कानून की दृष्टि से वर्जित है। टप्पन के अनुसार, "अपराध कानून संहिता के उल्लंघन में जानबूझकर किया गया आचरण है जो बिना किसी प्रतिरक्षा या औचित्य के किया गया है तथा जो राज्य द्वारा दण्डनीय है [2]।"

हल्सबरी के अनुसार "यह एक ऐसा गैर-कानूनी कृत्य है जो जनता के विरूद्ध अपराध है और जिसको करने वाले को कानून के अन्तर्गत दण्डित किया जाता है [3]।" बार्न्स तथा टीटर्स के अनुसार, "अपराध एक ऐसा समाज-विरोधी व्यवहार है, जिसने

सार्वजनिक भावना को कानून से निषिद्ध सीमा तक उल्लंघन किया है [4]।" सभी परिभाषाओं के सार में यह कहा जा सकता है कि अपराध का अर्थ ऐसे व्यवहार से है, जो समाज अथवा कानून द्वारा अस्वीकृत है। अस्वीकृत व्यवहार के कई अर्थ है, जैसे- सामाजिक दृष्टि से अस्वीकृत, नैतिक दृष्टि से अस्वीकृत एवं कानूनी दृष्टि से अस्वीकृत। समाजशास्त्रीय दृष्टि से जो व्यवहार अस्वीकृत हो, जरूरी नहीं कि कानूनी दृष्टि में भी वह अपराध हो। आधुनिक समाज में अपराध का कानूनी (Legal) अर्थ ही महत्व रखता है। जब कोई व्यक्ति सामाजिक मानकों का उल्लंघन करता है और कानूनी प्रक्रिया के अनुसार वह अपराधी घोषित हो जाता है, तो वह व्यक्ति अपराधी कहलाता है। कानूनी दृष्टिकोण से एक अथवा एक से अधिक कानूनी प्रावधानों/धाराओं के विरूद्ध व्यवहार करना अपराध कहलाता है।

प्राचीन काल से अपराधों को रोकने के लिए दण्ड एवं न्याय की व्यवस्था चली आ रही है। मनु, याज्ञवल्क्य, नारद आदि ऋषि मुनियों ने भी अपने धर्मशास्त्रों में दण्ड की चर्चा की है। अतीत में दण्ड एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसके तहत अपराधी व्यक्ति को दण्ड देना धर्म (कर्त्तव्य) माना गया है। भारत में मनुस्मृति में न्याय मीमांसा तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दण्ड विधि से सम्बन्धित सुस्थापित व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है।

शाब्दिक रुप में 'दण्ड' शब्द संस्कृत के दण्ड+घञ्ः से बना है, जिसका अर्थ है, जुर्माना करना, शारीरिक कष्ट देना आदि। अंग्रेजी भाषा का 'Punishment' शब्द लेटिन भाषा के 'Pione' से बना है, जिसका अर्थ है, जुर्माना या हर्जाना देना। मूल रूप से इस शब्द में शारीरिक या मानसिक कष्ट की अनुभूति भी निहीत है, जो किसी समाज द्वारा वर्जित कार्य को करने वाला व्यक्ति क्रमशः देता है अथवा भुगतता है। साधारण बोलचाल की भाषा में दण्ड का अभिप्राय है, अपकार या दुष्कर्म करने वाले को यातना पहुँचाना अथवा प्रताड़ित करना। परन्तु विधिक दृष्टि से दण्ड का एक विशिष्ट अर्थ है। दण्ड का अर्थ अपराधी को किसी भी रूप में सजा देना है। विधि-वेत्ताओं एवं अपराधशास्त्रियों ने दण्ड को विभिन्न रुपों में पारिभाषित किया है-

एनरिको फेरी ने 'दण्ड' को 'एक विधिक प्रतिरोध' (Legal deterrent) बताया है [5]। सदरलैंड के अनुसार, "दण्ड में कष्ट या पीड़ा निहित रहती है जो समुदाय के सामाजिक मूल्यों द्वारा न्यायोचित मानी जाती है [6]।"

सारांशतः सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण के लिए जो कानून निर्मित है, उनके उल्लंघन में किए गए कार्यों हेतु वे निर्मित किए जाते हैं, उनके उल्लंघन को रोकने के लिए भय के रुप में अपराधी को विधिक एवं न्यायिक प्रक्रिया के तहत शारीरिक, मानसिक या आर्थिक कष्ट पंहुचाना दण्ड कहलाता है।

सामाजिक एकता, शान्ति और व्यवस्था की सुरक्षा करना, अपराधों का निवारण करना, अपराधी को अपराध की पुनरावृत्ति से रोकना, अपराधी को प्रायश्चित और पश्चाताप की अनुभूति कराना, समाज-विरोधी तत्वों में भय उत्पन्न करना, प्रतिशोध और आहत व्यक्ति की क्षतिपूर्ति, अन्य व्यक्तियों को अपराध

से निवारित रखना, अपराधी में सुधार लाना दण्ड देने के पीछे निहित प्रमुख उद्देश्य है।

2. प्राचीन दंड व्यवस्था

अपराध और दण्ड का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव सभ्यता का। स्मृति काल तक आते-आते अपराधों की एक स्पष्ट एवं विस्तृत सूची हमें देखने को मिलती है। हिन्दू विधि-शास्त्रियों ने अपराधों का वर्णन मुख्य रूप से वाक् पारुष्य, दण्ड पारूष्य, स्तेय, साहस, स्त्री संग्रहण और प्राकीर्णक के शीर्षकों के अन्तर्गत किया है। प्रस्तुत अध्याय में केवल अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण अपराधों तथा उनके लिए निर्धारित विभिन्न प्रकार के दण्डों को प्रस्तुत किया जा रहा है। शुक्रनीतिसार में अपराधें के प्रकारों के बारें में लिखा गया है कि-

कायिको वायिको मानसिकः सांसर्गिकस्तथा।
चतुर्विधोडपराधः स बुद्वयबुद्विकृतो द्विधा [7]।।

2.1. वाक् पारूष्य- वाक् पारुष्य का शाब्दिक अर्थ शब्दों द्वारा हिंसा है, जिसे हम सामान्य रूप से गाली देना तथा निन्दा करना समझ सकते हैं। नारद के अनुसार-देश, जाति अथवा व्यक्ति को अपमानित करना अथवा मानसिक कष्ट पहुँचाते हुए उच्च स्वर में प्रयुक्त अपशब्द वाक् पारुष्य है-

देशजाति कुलादीनामाक्रोशन्यङ्कसंज्ञितम्।
यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते [8]।।

कात्यायन ने वाक् पारुष्य की परिभाषा देते हुए लिखा है कि दूसरे के सम्मुख संसार के निन्दित शब्दों का उच्चारण, हुंकार अथवा कठोर भाषा का प्रयोग करना वाक् पारुष्य है [9]। वाक् पारुष्य के लिए निर्धारित दण्ड का स्वरूप तथा परिभाषा इस बात पर निर्भर करती है कि गाली देने वाला तथा जिसे गाली दी गई है, उसकी जाति क्या है। साथ यह भी देखा जाता था कि किस प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग हुआ है।

आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दण्डयः [10]।

अर्थात द्विजातियों के साथ आसन, शयन, वार्तालाप और मार्ग में समानता पाने का प्रयास करने वाला शूद्र दण्ड के योग्य होता है। बृहस्पति ने वाक् पारुष्य के लिए समान वर्ण, उच्च वर्ण और निम्न वर्ण के व्यक्तियों पर अर्थ दण्ड के विषय में सामान्य नियम का प्रतिपादन करते हुए कहा कि यदि दो समान वर्ण के व्यक्ति एक-दूसरे पर आरोप लगाते हैं तो उन दोनों पर समान अर्थ-दण्ड होता है। निम्न वर्ण का व्यक्ति यदि उच्च वर्ण के व्यक्ति पर आपेक्ष करता है तो उसे द्विगुण तथा उच्च वर्ण के व्यक्ति पर इसका आधा अर्थ-दण्ड होता है [11]।

मनु का भी कहना है कि ब्राह्मण से कटु वचन कहने पर क्षत्रिय 100 पण से और निन्दनीय कटुवचन कहने पर उपर्युक्त दण्डों के दुगुने पणों से वह दण्डनीय होता है।

पञ्चाशद् ब्राह्मणो दण्डः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः [12]।।

विष्णु का भी विचार था कि समान वर्ण के व्यक्ति को अपशब्द कहने वाला 12 पणों से तथा अपने से निम्न जाति के व्यक्ति को अपशब्द कहने वाला 6 पणों से दण्डनीय होता है [13]। गौतम का कहना है कि

यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रीय या वैश्य को अपशब्द कहे तो उसे क्रमशः पचास पणों तथा पचीस पणों का दण्ड देना चाहिए। शुद्र को अपशब्द कहने पर उसे कोई अर्थ-दण्ड नहीं देना चाहिए [14]।

2.2. दण्ड पारुष्य - दण्ड पारुष्य भी अपराध की सूची में शामिल है। दण्ड पारुष्य के तहत मुख्यतः शारीरिक हिंसा को लिया जाता है। कौटिल्य के अनुसार, किसी को स्पर्श करना, पीटना और चोट पहुँचाना दण्ड पारुष्य है।

दण्डपररुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं प्रहतमिति।

नारद के अनुसार, किसी के अंग को हाथ, पैर अथवा अन्य शस्त्र से पीड़ित करना दण्ड पारुष्य है [15]। बृहस्पति हाथ-पैर, मुद्रा, भस्म या कीचड़ फेंककर और आयुध से पीड़ा पहुँचाने को दण्ड पारुष्य मानते हैं [16]। दण्ड पारुष्य के अन्तर्गत वृक्षों, पशुओं एवं दूसरे की सम्पत्ति के प्रति किये गए अपराध भी आते हैं। नारद के अनुसार, दण्ड पारुष्य हीन, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार का होता है जो कि क्रमशः मारने के लिए हाथ या हथियार उठाना, बिना किसी अनुताप के आक्रमण करना और घायल करना है। दण्ड पारुष्य में दण्ड देने के पूर्व यह अच्छि तरह से देखा जाता था कि कौन दोषी है और कौन निर्दोष? इसे जानने के लिए नारद कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार जब दोनों पक्ष एक साथ कलह करना प्रारम्भ करते हैं तो दोनों को समान दण्ड मिलेगा। जो प्रथम पारुष्य प्रारम्भ करता है वह निश्चित रूप से अपराधी है, किन्तु जो स्वयं प्रत्युत्तर देते हैं वह भी समान रूप से अपराधी है। इनमें अपराध को प्रारम्भ करने वाला ही अधिक दण्डनीय माना गया। जब दोनों समान रूप से कलह करते हैं तो जो आगे बढ़कर निरन्तर आक्रमण करता रहता है, उसे अपेक्षाकृत अधिक दण्ड मिले, चाहे उसने आक्रमण किया हो या नही। वाक् पारुष्य की भाँति दण्ड पारुष्य का दण्ड भी इस आधार पर दिया जाता था कि अपराध करने वाले तथा जिसके प्रति अपराध किया गया है, उसकी जाति क्या है? इस विषय में कात्यायन का कथन है कि जिस प्रकार वाक् पारुष्य में गाली देने वाले तथा जिसे गाली दी जाती है, उसकी जाति के अनुसार दण्ड तय होता था। उसी प्रकार दण्ड पारुय में भी होता है। यदि अपराधी मार खाने वाले से निम्न जाति का होता तो उसे अधिक दण्ड दिया जाता और यदि मार खाने वाला, मारने वाले से निम्न जाति का होता तो अपराधी को कम दण्ड दिया जाता था [17]। दण्ड पारुष्य के अपराध पर शुद्रों को दिये जाने वाले दण्डों पर विचार करें तो मनु का कहना था कि शुद्र जब भी जिस अंग से विद्वान को मारे, राजा उसके उसी अंग को कटवा डाले।

शूद्रो येनाग्डेन ब्राह्मणमभिहन्यात् तदस्य छेदयेत् [18]।

कौटिल्य का भी मानना था कि शुद्र जिस अंग से ब्राह्मण पर प्रहार करे उसका वह अंग कटवा देना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण को पीड़ा पहुँचाने वाले अब्राह्मण को, जिस अंग से उसने प्रहार किया हो, उसे कटवाने का निर्देश करते है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नारद, बृहस्पति एवं विष्णु ने भी किया है।

मारने पीटने के अतिरिक्त, राख, कीचड़ धूल तथा अन्य घृणित वस्तुएं दूसरे व्यक्ति पर फेंकना अथवा

अपवित्र हाथ से छूना भी दण्ड पारुष्य के अन्तर्गत एक गम्भीर अपराध समझा गया। कात्यायन के अनुसार दूसरे व्यक्ति के शरीर पर वमन, मूत्र या अन्य कोई भी गन्दी चीज फेंकने पर दस पण का चार गुणा दण्ड, शरीर के मध्य पर फेंकने पर छः गुणा दण्ड और सिर पर फेंकने का आठ गुणा दण्ड होना चाहिए [19]। पशुओं के प्रति की जाने वाली क्रूरता भी दण्ड पारुष्य के अन्तर्गत आती है। पशुओं या मनुष्यों को मारते समय दण्ड इस आधार पर तय होता कि उन्हें कितनी पीड़ा हुई है। इसके अतिरिक्त, पशुओं को मारते अथवा उनके अंगच्छेद के लिए दण्ड देते समय यह भी देखा जाता कि पशु का मूल्य अथवा आकार क्या रहा? पशुओं के अतिरिक्त वृक्षों, लताओं आदि को काटने पीटने पर भी दण्ड की व्यवस्था की गई। विविध प्रकार के वृक्षों को काटना भी दण्ड प्रारूष्य के अन्तर्गत अपराध समझा गया, जिनके लिए वृक्षों की उपयोगिता के आधार पर दण्ड दिया जाता था। जैसे यदि वृक्ष, लताएं तथा झाड़ियाँ मन्दिर, श्मशान या सीमा पर स्थित होते थे, तो दण्ड दो गुना हो जाता था। दूसरे की सम्पत्ति को हानि पहुँचाना भी दण्ड पारुष्य के अन्तर्गत अपराध समझा जाता था। किसी मनुष्य द्वारा किसी की किसी भी वस्तु को जानबूझकर या अज्ञानतावश नष्ट कर देने पर भी यह प्रावधान था कि वह मनुष्य नष्ट की गई वस्तु का वास्तविक मूल्य, उस वस्तु के स्वामी को तथा उतना ही मूल्य दण्ड स्वरूप राजा को दे।

2.3. स्तेय एवं साहस- स्तेय का अर्थ चोरी है। दूसरे शब्दों में छिप कर किसी वस्तु का अपहरण करना या किसी वस्तु को लेकर वापस करने से मुकर जाना स्तेय कहलाता है। जबकि साहस का तात्पर्य डकैती एवं गुण्डागर्दी से है। कौटिल्य के अनुसार किसी की परवाह किए बिना खुले आम बलात्कार करना, डकैती डालना तथा मारकाट करना साहस कहलाता है। ऋग्वेद में चोरी के प्रसंग में 'स्तेन' एवं 'तस्कर' शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में आये हुए इन शब्दों के विषय में काणे का मानना है कि स्तेन का अर्थ वह चोर, जो सम्पत्ति को गुप्त रूप से उठा ले जाता है तथा तस्कर वह है, जो प्रत्यक्ष रूप से चोरी करता है।

मनु के अनुसार, स्तेय और साहस दो भिन्न अपराध है, जिन्हें हम आधुनिक भाषा में चोरी और डाका कह सकते हैं। मनु के अनुसार, स्वामी के सम्मुख बलपूर्वक किसी वस्तु का अपहरण करना साहस (डाका डालना) और स्वामी के परोक्ष में (नहीं रहने पर) किसी वस्तु का अपहरण करके भाग जाना (या अपहरण के बाद अस्वीकार करना) स्तेय कहलाता है [20]। याज्ञवल्क्य भी किसी वस्तु के बलपूर्वक अपहरण को साहस कहते हैं।

हिन्दू विधि-प्रणेताओं ने मार्ग में लूटमार करने वाले (पान्थमुट) चोरों के लिए भी कठोर दण्डों का विधान किया है। कौटिल्य का कथन है कि पथिकों को मार्ग में रोकने वालों या उन्हें चोट पहुँचाने वालों (पथिवेश्य प्रतिरोधकम्) को सूली पर लटका दिया जाना चाहिए [21]। बृहस्पति भी बदमाशों को वृक्ष से बांधकर लटका देने की बात कहते हैं। सेंध लगाकर चोरी करने वालों को भी कठोर दण्ड देने का प्रावधान था। पशु चोरी को भी दण्डनीय बनाया गया। पशु की

चोरी के लिए दण्ड देते समय पशु का आकार, मूल्य तथा उपयोगिता को ध्यान में रखा जाता था। अन्न चुराने वालों को भी कठोर दण्ड मिलता था। बृहस्पति धान्य को चुराने वाले से धान्य का दस गुणा धान्य के स्वामी को तथा दुगुना राजा को दिलाने का प्रावधान करते हैं [22]।

प्राचीन दण्ड विधान में अपवाद स्वरुप कुछ वस्तुओं को बिना उसके स्वामी के पूछे उठाना चोरी नहीं माना जाता। यथा गो-ग्रास, हवन के लिए समीधा, द्विज द्वारा जलाने के लिए ईंधन और पुष्प, आदि। महाभारत के शान्ति पर्व में भी इसका उल्लेख हुआ है। चोरी के अपराध में जो दण्ड दिये जाते, उनका उद्देश्य अपराध की पुनरावृत्ति को रोकना था। इसीलिए कुछ अवसरों पर अंग-भंग का भी प्रावधान देखने को मिलता है। प्राचीन दण्ड विधान सफेदपोश अपराध को रोकने के लिए भी प्रावधान करता है। सफेदपोश चोरों में व्यापारियों, स्वर्णकारों, धोबी, मिथ्या चिकित्सकों, जुआरियों (द्युतकर्मियों) आदि आते हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार जो तराजु (माप का यंत्र) से तोलने, तौल के मानो (बांट) और माणक (सिक्कों) में धूर्तता करें, तो उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति, जो न्यायालय में झूठी गवाही देते हों, उनकी गणना भी चोरो में ही की गई है।

मनुष्य मारण अथवा हत्या के सम्बन्ध में भी प्राचीन दण्ड विधान में कई प्रावधान देखने को मिलते हैं। बृहस्पति ने तो साहस के अपराधों में सबसे निकृष्ट अपराध मनुष्य मारण को ही माना है। कौटिल्य ने हत्या की परिस्तिथियों का सही-सही आंकलन कर, हत्या के दोषी का पता लगाने पर बल दिया है। सोच-विचार कर की जाने वाली हत्या पर कठोर दण्ड का प्रावधान था, जबकि दुर्घटनावश हुई हत्या में थोड़ी नरमी बरती जाती थी। अन्य अपराधों की भांति हत्या के मामले में भी अपराधी तथा मृतक की जाति देखी जाती थी। कुछ स्थानों पर यह भी कहा गया है कि माता-पिता, भ्राता, आचार्य और तपस्वी की हत्या करने वाले की चमड़ी उतरवाकर उसमें अग्नि लगाकर उसका वध कर देना चाहिए। आत्मरक्षार्थ की गई हत्या भी प्राचीन काल में क्षम्य मानी गई। विभिन्न साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि कुछ विशिष्ट हालातों में आत्मरक्षा के लिए आतातायी का वध करना अपराध नहीं माना गया। आतातायी वह व्यक्ति माना गया जो क्रोध में किसी व्यक्ति पर आक्रमण करने आया हो। आत्मरक्षा के सम्बन्ध में प्राचीन दण्ड विधान में यह भी प्रावधान था कि व्यक्तिगत सुरक्षा के नाम पर हत्या क्षम्य होगी किन्तु व्यक्तिगत सुरक्षा उसी स्थिति में की जाए जब शासक को सूचित करने का समय न हो। साथ ही हमलावर को उतनी ही क्षति पहुंचानी चाहिए, जितनी कि आवश्यक हो।

प्राचीन काल से ही स्त्री संग्रहण नैतिकता और वैवाहिक जीवन के विरूद्ध एक गंभीर अपराध माना गया है। स्त्री संग्रहण में बलात्कार और व्यभिचार दोनों ही आते हैं। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि स्त्री संग्रहण में दण्ड देते समय कुछ बातों का विशेष ध्यान रखा जाता था। यथा बलात्कार के विषय में यह देखा जाता कि जिस स्त्री के साथ बलात्कार हुआ है वो किस जाति की है; विवाहिता है अथवा नहीं। यह भी ध्यान रखा जाता कि उच्च वर्ण की स्त्री के साथ बलात्कार होने पर अधिक तथा निम्न वर्ण की स्त्री के

साथ बलात्कार होने पर अल्प दण्ड दिया जाए । यह बात गौर तलब है कि प्राचीन काल में स्त्री हत्या को बहुत गम्भीर अपराध माना गया। इस बात का अंदाजा इसी से लगता है कि ब्राह्मण, जिसे किसी भी अपराध में प्राणदण्ड से मुक्त रखने की बात कही गई थी, उसे भी स्त्री हत्या में प्राणदण्ड दिया जाने का प्रावधान था।

प्राचीन शास्त्र और दण्ड विधान अप्राकृतिक यौन अपराधों पर भी कुछ प्रावधान करते हैं। ऐसे यौन अपराधों को अपराधियों की मानसिक विकृतियों का परिणाम बताया गया है। द्युत क्रीडा अथवा समाह्य (प्राणियों -कुक्कुट, मेष आदि की लड़ाई) के सम्बन्ध में भी अलग-अलग दण्ड प्रावधान देखने को मिलते है। विधिशास्त्रियों ने राजद्रोह की अलग-अलग परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए दण्ड के प्रावधान भी किए है। कौटिल्य के अनुसार राज सिहासन की इच्छा रखने वाले, अन्तःपुर में व्यर्थ का झमेला (विवाद) खड़ा करने वाले, जंगली जातियों अथवा शत्रुओं को राजा के विरुद्ध भडकाने वालों एवं सेना में विद्रोह फैलाने वाले, पुरुषो के सर और हाथ में अग्नि लगाकर वधिक द्वारा वध करा देना चाहिए, और यदि ब्राह्मण यह दुष्कर्म करें तो उसे आजीवन कारावास का दण्ड देना चाहिए [23]।

3. वर्तमानकालिक दण्ड व्यवस्था

आधुनिक समाज जटिल होने के साथ ही गतिशील भी है। सामाजिक रूपांतरण के विभिन्न आयामों ने समाज के ढाँचे, उसकी संरचना और उसके स्वरूप में कई महत्वपूर्ण, उल्लेखनीय और व्यापक परिवर्तन प्रस्तुत किए हैं। ऐसे ही परिवर्तन अपराध के संबंध में भी नजर आते हैं। वर्तमान में भारत के सन्दर्भ में कहे तो अपराध का सम्बन्ध समाज के किसी एक वर्ग विशेष के साथ स्थापित नहीं किया जा सकता है। आज समाज का हर वर्ग - उच्च हो या निम्न, शिक्षित हो या अशिक्षित, महिला हो या पुरुष, किसी न किसी अपराध से जुड़ा हुआ है। हर वर्ग का व्यक्ति अपने निहित और संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिए किसी न किसी अपराध को अंजाम दे रहा है। इसी पृष्ठभूमि पर समाज में होने वाले अपराधों पर चर्चा करना यहां प्रासंगिक हो जाता है। वर्तमान में समाज में सामाजिक और आर्थिक वर्गों से जुड़े उच्च प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा अपने पेशे अथवा व्यवसाय से सम्बन्धित क्रिया-कलापों के दौरान विधि की उल्लंघना करते हुए अनुचित लाभ प्राप्ति का प्रयास किया जाता है तो यह सामान्यतः सफेद-वसन अपराध बन जाता है। एक निर्दिष्ट आयु के भीतर (जिसे बालक माना जाए) आने वाले बच्चों द्वारा जब विधि की अनदेखी अथवा उल्लंघना करते हुए प्रतिबंधित अथवा गैर-कानूनी कार्य किए जाते हैं तो यह बाल अपराध कहलाता है। महिलाएं जब अपराध करती हैं तो यह महिला अपराध कहलाता है। लेकिन जब अपराध महिलाओं के विरुद्ध होते हैं तो उन्हें भी महिला अपराध ही कहा जाता है। सूचना और प्रोद्योगिकी से सम्बन्धित अपराध, साइबर अपराध के रूप में सामने आते हैं। यौन अपराध के तहत सामाजिक मर्यादाओं और नैतिकता के विपरीत पुरुष-स्त्री के बीच शारीरिक सम्बन्ध स्वेच्छा अथवा जबरन बनने लगे हैं। दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा मिलकर सुनियोजित तरीके से संगठित अपराध होते हैं। किसी देश की वित्तीय व्यवस्था पर संकट लाने

वाले अपराध वित्तीय अपराध कहलाते हैं। इसके अलावा कुछ विद्वानों के मत में सामाजिक मूल्यों और नेतिकता की उपेक्षा करते हुए समाज में सामाजिक विषयों को गैर कानूनी जामा पहनाया जाता है तो वे सामाजिक अपराध बन जाते हैं, जैसे दहेज, सती, बाल विवाह आदि। इसी तरह मादक पदार्थों से जुड़े गैर-कानूनी कृत्य भी अपराध की श्रेणी में ही आते हैं।

अपराध का दंड से गहरा रिश्ता है। प्राचीन काल में दंड का मुख्य उद्देश्य प्रतिरोधात्मक और निरोधात्मक ही था। इसीलिए प्राचीन साहित्यों में दंड के जितने भी स्वरूप मिलते हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि उनमें अर्थ दंड, और शारीरिक दंड प्रमुख था। अर्थ दंड के रूप में मुद्रा अथवा वस्तुएं ली जाती थी। शारीरिक दंड के तहत कोड़े मारना, कारावास, अंग-भंग, दागना, सामान्य अथवा कठोर मृत्युदंड आदि आते थे। इसके अलावा निर्वासन और अपमानित करने की प्रथा भी थी। वर्तमान की दंड व्यवस्था देखें तो अपराधियों को दिए जाने वाले प्रमुख दंड निम्न हैं [24] - मृत्युदंड, आजीवन कारावास, कारावास, सम्पत्ति की जब्ती, अर्थदंड अथवा जुर्माना, परिवीक्षा, चेतावनी, पेरोल, क्षमादान।

एक आदर्श राज्य में अपराध के नियन्त्रण और अपराधियों पर अंकुश रखने के लिए यह जरूरी है कि अपराध के सम्बन्ध में उचित दंड प्रक्रीया की व्यवस्था हो, वर्तमान भारत में जो दंड व्यवस्था प्रचलित है वह ब्रिटिश काल की देन है। भारतीय समाज को कानूनी रूप से व्यवस्थित रखने के लिए सन् 1860 में लॉर्ड मेकाले की अध्यक्षता में भारतीय दंड संहिता (Indian Panel Code) का निर्माण किया गया। इस संहिता में विभिन्न अपराधों को सूचीबद्ध करते हुए विभिन्न अपराधों और उनसे जुड़े सन्दर्भों में दंड और सजा का उल्लेख किया गया है। स्वतंत्र भारत में समानता, स्वतन्त्रता, न्याय, व्यक्ति की गरीमा के जो आदर्श तय किए गए थे, उसी के अनुरूप इस दंड संहिता में कई आवश्यक संशोधन भी किए गए। प्राचीन दंड व्यवस्था की वर्तमान दंड व्यवस्था से तुलना करने पर यह जरूरी है कि वर्तमान में जो दंड व्यवस्था प्रचलित है उसके प्रमुख प्रावधानों को समझा जाए।

भारतीय दंड संहिता की धारा 107 से 119 तक में दुष्प्रेरण सम्बन्धी तथ्यों को स्पष्ट किया गया है। इसके तहत अपराध करने या करवाने हेतु उकसाने की प्रवृत्ति को अपराध की श्रेणी में माना गया है (धारा 107)। नियम यह कहता है कि किसी व्यक्ति के उकसाने पर अपराध हो न हो, उकसाने वाला अवश्य ही दुष्प्रेरण का दोषी बन जाता है। विधि यह भी स्पष्ट करती है कि दुष्प्रेरण का कार्य यदि एकाधिक व्यक्तियों द्वारा संपादित होता है तब इस कार्य में सम्मिलित सभी व्यक्ति अपराधी होते हैं। इसी तरह यदि दुष्प्रेरण का अपराधी कोई षड्यंत्र करे और इस पर भी अपराध में उसकी कोई भूमिका न होने पर भी वह दोषी बन जाता है। इस संहिता में उन परिस्थितियों का भी उल्लेख किया गया है जिसके तहत, मृत्यु, आजीवन कारावास, अथवा सामान्य कारावास से दण्डित अपराधी यदि दुष्प्रेरण करता है तो वह भी अपराधी ही होता है। यदि किसी लोकसेवक को अपराध हेतु प्रेरित किया जाए, फिर भले ही अपराध हुआ हो या नहीं, प्रेरित करने वाला दोषी बन जाता है। ऐसे में उसे वास्तविक अपराध का निर्धारित दंड दिया जाता है।

जब कोई सक्षम अधिकारी को भ्रमित करके अपराध होने में मदद करता है अथवा मिथ्या सूचना द्वारा अपराध को आसान बनाने का प्रयास करता है तब भी वह दुष्प्रेरण का दोषी बन जाता है। जब कोई लोकसेवक अपराध की योजनाओं को जानते हुए भी उसके निवारण का कोई प्रयास न करे तथा अपराध होने के अनुकूल परिस्थितियां बनाने दे तो वह लोक सेवक भी दुष्प्रेरण का दोषी कहलाता है।

अपराधिक षड्यंत्रों को परिभाषित (धारा 120-क) करते हुए बताया गया है कि जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर कोई अवैध कार्य करते हैं तो वह अपराधिक षड्यंत्र के तहत आता है। इसी तरह जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी वैध कार्य को अवैध साधनों द्वारा सम्पन्न करते हैं तो इस कृत्य को भी अपराधिक षड्यंत्र के तहत ही माना जाता है (धारा 120-ख)।

दंड संहिता में राज्य के विरुद्ध होने वाले विविध कृत्यों को भी दंडनीय अपराध माना है। इसके तहत जो भी भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध करेगा, अथवा युद्ध की कोशिश करेगा, अथवा किसी को युद्ध के लिए उकसाएगा तो इसे गम्भीर अपराध मानते हुए उसे दंड का भागी माना जाएगा (धारा 121)। युद्ध के उद्देश्य से आयुध इकट्ठा करना भी अपराध है (धारा 122)। इसी तरह युद्ध की योजनाओं को आसान बनाने के उद्देश्य से उससे सम्बन्धित सूचनाओं को छिपाना भी अपराध है। संवैधानिक पदों पर आसीन व्यक्तियों पर हमला करना, उन्हें आतंकित करना अथवा ऐसे ही अन्य कृत्यों को भी दंडनीय अपराध माना गया है (धारा 124)। विधि द्वारा स्थापित सरकार के प्रति किसी भी माध्यम से घृणा और शत्रुता उत्पन्न करना या कराना राजद्रोह के तहत दंडनीय अपराध माना गया है (धारा 124-क)। भारत के किसी एशियाई मित्र राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध करना या युद्ध के प्रयास करना या युद्ध को उकसाना भी दंडनीय अपराध है (धारा 125)। इसी तरह भारत के साथ शान्ति अथवा मैत्री रखने वाले राज्य में लूटपाट करना अथवा लूट की कोशिश करना अपराध है (धारा 126)। यह भी प्रावधान किया गया है कि युद्ध अथवा लूटपाट से सम्बद्ध सम्पत्ति को पाने वाला भी अपराधी ही होता है (धारा 127)। विधि यह भी तय करती है कि यदि कोई लोकसेवक किसी युद्ध कैदी अथवा राजद्रोही अथवा राजकैदी को स्वैच्छा से भगा दे तो वह दंडनीय अपराध का भागी होगा (धारा 128)। इसी तरह कैदियों को भगाने में सहायता करने वाला कोई अन्य भी दंड का भागी होता है (धारा 130)।

दंड संहिता में सेना के सभी प्रारूपों से सम्बन्धित अपराधों का भी उल्लेख किया गया है [25]। यदि कोई व्यक्ति किसी सैनिक या सैन्य अधिकारी को विद्रोह के लिए प्रेरित करता या उन्हें अपने कर्त्तव्यों से विमुख करता है तो यह अपराध कहलाता है (धारा 131)। किसी भी सैनिक अथवा सैन्य अधिकारी को अभित्यजन करने के लिए उकसाया जाता है अथवा अभित्याजक को संश्रय दिया जाता है (धारा 135, 136) तो यह भी दंडनीय अपराध की श्रेणी में आता है। सेना की पौशाक अथवा चिन्ह (टोकन) को धारण करना भी अपराध है (धारा 140)।

विधि के तहत प्रशान्ति के विरुद्ध अपराधों को भी स्पष्ट किया गया है। किसी विशेष उद्देश्य (प्रतिरोध अथवा अपराधिक कृत्य) से पांच अथवा उससे अधिक व्यक्तियों का एक स्थान पर इकट्ठा होना अपराध कहलाता है (धारा 141)। यदि कोई घातक हथियार लेकर इस विधि विरुद्ध जमाव में शामिल होता है तो वह भी दंडनीय अपराध होता है (धारा 144)। इसी तरह जब किसी विधि विरुद्ध जमाव द्वारा अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हिंसा अथवा बल का प्रयोग होता है तो यह भी दंडनीय होता है। विधि यह भी प्रावधान करती है कि लोगों को विधि विरुद्ध जमाव में सम्मिलित होने के लिए प्रलोभन देने वाला अथवा बाध्य करने वाला भी दंड का भागी होता है (धारा 150)। विधि विरुद्ध जमाव को बिखरने का कानूनी आदेश जारी होने के बाद भी उसमें बने रहना, जब लोकसेवक बलवे को शांत कर रहे हो तब उन्हें परेशान अथवा बाधित करना जैसे कृत्यों को भी दंडनीय अपराध माना गया है (धारा 145, 152)। धर्म, जाति, भाषा, स्थान आदि किसी आधार पर किन्हीं दो समूहों में शत्रुता लाना अथवा उनके भाईचारे को कम करने का प्रयास करना भी अपराध कहा गया है (धारा 153-क)। राष्ट्रीय अखंडता को प्रभावित करने वाले आरोपों एवं प्रयासों को भी अपराध की श्रेणी में माना गया है (धारा 153-ख)। जिस भूमि पर विधि विरुद्ध जमाव हुआ हो तो उसका स्वामि अथवा अधिभोगी भी दंड का भागी बनता है (धारा 154)। यदि कोई बलवा (हिंसा) किसी व्यक्ति विशेष के लाभ के लिए हुआ हो तो वह स्वयं अथवा उसका अभिकर्ता भी दंड का भागी होता है (धारा 155)। किसी भी विधि विरुद्ध जमाव में भाड़े पर जाने वाला व्यक्ति स्वयं तथा ऐसे व्यक्तियों को शरण देना भी अपराध माना गया है (धारा 157)। कानून के अनुसार दंगा करने पर भी सजा का प्रावधान है (धारा 159)।

विधि द्वारा लोकसेवकों अथवा उनसे सम्बन्धित अपराधों के विषय में भी प्रावधान किया गया है [26]। इसके तहत यदि कोई लोकसेवक विधि द्वारा निर्धारित आचरण के विरुद्ध कार्य करें, अथवा उसके किसी आचरण से किसी व्यक्ति को क्षति पहुंचे तो उस लोकसेवक को अपराधी माना जाता है (धारा 166)। इसी तरह यदि कोई लोकसेवक जानबूझकर किसी दूसरे पक्ष को क्षति पहुचाने के लिए झूठे दस्तावेज बनाता है (धारा 167) अथवा कोई लोकसेवक अपने पद पर रहते हुए व्यापार में संलग्न रहता है तो ये सभी कृत्य अपराध की श्रेणी में रखे गए हैं (धारा 168)। किसी लोकसेवक द्वारा व्यक्तिगत अथवा संयुक्त रूप से विधि विरुद्ध संपत्ति खरीदना अथवा उसके लिए बोली लगाना अपराध माना गया है (धारा 169)। जब कोई व्यक्ति गलत तरीके से किसी लोकसेवक के पद को धारण करता है या धारण करने का प्रयास भी करता है तब भी उसे अपराधी मानते हुए दण्डित किया जा सकता है (धारा 170)। इसी तरह यदि कोई अपने अनुचित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किसी लोकसेवक की पोशाक अथवा टोकन (चिन्ह) धारण करता है तो यह कृत्य भी अपराधिक पृवृत्ति का माना जाता है (धारा 171)। कोई लोकसेवक किसी व्यक्ति को दंड से या किसी सम्पत्ति को समपहरण से बचाने के उद्देश्य से विधि के निर्देशों की अवहेलना करता है तो यह अपराध है।

लोकतंत्र में निर्वाचन का विशेष महत्व है। निर्वाचन की पारदर्शी प्रक्रियाएं और व्यवस्थाएं लोकतंत्र को मजबूत बनाती है। इसीलिए विधि के अनुसार निर्वाचन सम्बन्धी अपराधों को भी चिन्हित किया गया है [27]। सर्वप्रथम निर्वाचन अधिकार के दुरूपयोग के सम्बन्ध में यह प्रावधान है कि यदि कोई, अन्य किसी व्यक्ति को निर्वाचन अधिकार प्रयोग में लाने के लिए उत्प्रेरित करता है तो वह रिश्वत का अपराध करता है (धारा 171-ख)। कानून के अनुसार परितोषण देने और लेने वाले दोनों ही अपराधी होते हैं। किसी व्यक्ति द्वारा किसी निर्वाचन अधिकारी के कार्यों को निर्बाध तरीके से होने में स्वैच्छा से हस्तक्षेप किया जाता है या बाधा डाली जाती है तो यह निर्वाचन में असम्यक प्रभाव डालने का अपराध कहलाता है (धारा 171-च)। जब कोई चुनाव में फर्जी मतदान करता है अथवा मतदान को दुष्प्रेरित करता है तो वह निर्वाचन प्रतिरूपण का अपराध करता है। इसी तरह निर्वाचन परिणामों पर प्रभाव डालने के उद्देश्य से किसी अभ्यर्थी के बारें में मिथ्या प्रचार करना अथवा उसके विरुद्ध अवैध काम करना भी अपराध ही होता है। अभ्यर्थी की बिना इच्छा और अनुमति के यदि उसके चुनाव प्रचार पर किसी प्रकार का व्यय करना भी अपराधिक कृत्य कहलाता है। किसी अभ्यर्थी द्वारा अपने चुनावों का वित्तीय लेखा न रखना भी अपराध की श्रेणी में आता है (धारा 171-झ)।

विधि के अनुसार लोकसेवकों में विधिपूर्ण प्राधिकार की उपेक्षा करने पर भी दण्ड का प्रावधान किया गया है [28]। किसी सक्षम लोकसेवक द्वारा निकाले गए समन, सूचना या आदेश की तामिल से बचने के लिए फरार होना अपराध है (धारा 172)। किसी सक्षम लोकसेवक द्वारा निकाले गए आदेश, समन अथवा सूचना पर भी आदेशित व्यक्ति अथवा उसके अभिकर्ता का अनुपस्थित रहना दंडनीय अपराध है (धारा 174)। यदि कोई लोकसेवक किसी को भी किसी भी प्रकार का दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए आदेशित करे तो वह उसकी पालना के लिए बाध्य होता है। यदि सक्षम अधिकारी के आदेश की अवहेलना हो तो यह दंडनीय अपराध है (धारा 121, 175)। यदि कोई लोकसेवक जानबूझकर वांछित सूचना के स्थान पर मिथ्या सूचना देता है तो यह भी अपराधिक कृत्य है (धारा 177)। जब कोई, सक्षम अधिकारी द्वारा निर्देशित करने के बावजूद सत्य कहने के लिए स्वयं को शपथ या प्रतिज्ञा से आबद्ध करने से इंकार कर दे तो यह भी अपराध है (धारा 178)। इसी भांति प्राधिकृत लोकसेवक को उसके द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार करना, सक्षम अधिकारी के समक्ष अपने दिए कथन पर हस्ताक्षर करने से इनकार करना, किसी दूसरे व्यक्ति को क्षति पहुंचाने के उद्देश्य से किसी लोकसेवक को मिथ्या सूचना प्रदान करना दंडनीय अपराध में आता है (धारा 179-181)। जब कोई लोकसेवक अपने विधिपूर्ण प्राधिकार के तहत किसी की सम्पत्ति को ले जाता है और सम्बन्धित व्यक्ति उसका प्रतिरोध करता है, अथवा लोकसेवक के प्राधिकार द्वारा विक्रय के लिए प्रतिस्थापित सम्पत्ति के विक्रय में बाधा डालता है अथवा ऐसी सम्पत्ति का अवैध क्रय करता है या उसकी अवैध बोली लगाता है, लोक सेवक के लोक

कृत्यों के निर्वहन में बाधा डालता है, विधि द्वारा आबद्ध होने के बावजूद लोकसेवक की सहायता करने से विमुख होता है, तो ये सभी अपराध हैं (धारा 183-187)। लोकसेवक द्वारा सम्यक रूप से प्रख्यापित आदेश की अवहेलना करना, किसी लोकसेवक को स्वयं या किसी के माध्यम से धमकाना भी दंडनीय अपराध माना गया है।

न्याय को प्रभावी और प्रामाणिक बनाने के लिए विधि ने मिथ्या साक्ष्यों और लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के विषय में भी प्रावधान किए हैं [29]। विधि द्वारा सत्य कहने के लिए आबद्ध होने के बावजूद यदि कोई लिखित अथवा मौखिक किसी भी रूप में मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करता है, मिथ्या साक्ष्यों को निर्मित करता है या उनके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित करता है तो यह अपराध की श्रेणी में आता है (धारा 191-193)। इसी सन्दर्भ में यदि कोई किसी को मिथ्या साक्ष्य देने कि लिए धमकाता है, कोई जानबूझकर मिथ्या साक्ष्य का प्रयोग करता है, जो जानबूझकर मिथ्या घोषणा द्वारा साक्ष्यों को भ्रमित करें, अपराधी को दंड से बचाने के लिए साक्ष्यों से छेड़खानी करता है तो इन सभी कृत्यों को विधि के तहत गैर-कानूनी मानते हुए अपराध कहा गया है (धारा 195 क, 197)। किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध उसे नुकसान पहुंचाने के उद्देश्य से बिना किसी विधिक आधार के अपराध का दोषारोपण करना, अपराधी को शरण देना, अपराधी को दंड से बचाने के लिए उपहार आदि देना, चोरी की सम्पत्ति वापस कराने में सहायता करना अपराध ही है (धारा 211-214)। विधि यह भी प्रावधान करती है कि यदि कोई लोकसेवक अपराधी अथवा आरोपी को पकड़ने के कारणों को नष्ट कर दे या उनके भागने को बिना किसी कारण सहन कर ले या उनको भगाने में सहायता करें तो उसे भी अपराधी माना जाता है (धारा 217, 222-223)। किसी आरोपी द्वारा खुद को पकड़े जाने का प्रतिरोध करना या अवैध बाधा डालना या किसी अभिरक्षा से निकल भागना अथवा भागने का प्रयास करना, इसी तरह किसी अन्य व्यक्ति को विधि के अनुसार पकड़े जाने में बाधा डालना भी दंडनीय अपराध है (धारा 224, 225)। न्यायिक कार्य में बैठे लोकसेवक का उद्देश्यपूर्ण तरीके से अपमान करना और उसके कार्यों में बाधा डालने को भी दंडनीय अपराध माना गया है (धारा 228)।

मुद्रा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से जुड़ा हुआ प्रश्न है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को कोई क्षति न पहुंचे इसके लिए विधि में ये प्रावधान किए गए हैं कि भारतीय मुद्रा (सिक्कों) का कूटकरण करना (जाली मुद्रा बनाना), जाली मुद्रा निर्माण हेतु उपकरणों का निर्माण अथवा विक्रय करना, ऐसे उपकरणों को अपने कब्जे में रखना, भारतीय सीमा से बाहर किसी को जाली मुद्रा बनाने के लिए प्रेरित करना, जाली मुद्रा का आयात-निर्यात करना, जाली मुद्रा को जानबूझकर चलाना या उसे चलाने के लिए उत्प्रेरित करना दंडनीय अपराध हैं (धारा 231-241)। मुद्रा बनाने वाली टकसाल में कार्यरत व्यक्ति द्वारा मुद्रा निर्माण में किसी भी प्रकार की कोताही करना या लापरवाही बरतना, विधि विरुद्ध टकसाल से सिक्का बनाने का उपकरण ले जाना, मुद्रा का रूप परिवर्तित करना, सरकारी स्टाम्प को भी फर्जी तरीके से मुद्रित करना, स्टाम्प बनाने की सामग्री

अवैध रूप से कब्जे में रखना, इससे जुड़े उपकरण बनाना या बेचना आदि सभी कार्य दंडनीय अपराध माने गए हैं (धारा 244, 245, 246, 255, 256, 257)।

माप तोल के सम्बन्ध में भी दंड संहिता में कुछ अपराध चिन्हित किए गए हैं [30]। यदि वस्तुएं तोलने के लिए खोटे (दोषपूर्ण) उपकरणों का कपटपूर्वक उपयोग किया जाता है, खोटे बाट या माप का कपटपूर्वक उपयोग किया जाता है, कोई खोटे बाट या माप को कब्जे में रखता है, या उन्हें बनाने अथवा बेचने का कार्य करता है तो ये सभी अपराध दंडनीय घोषित किए गए हैं (धारा 264-267)।

विधि में सार्वजनिक जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण विषयों पर भी दंड के प्रावधान किए गए हैं । विधि सामान्य हित में लोक उपद्रव के तहत सामान्य जीवन को क्षति पहुंचाने वाले को अपराधी मानती है (धारा, 268)। उपद्रव बंद के आदेश के पश्चात भी यदि कोई उपद्रव जारी रखता है या उपद्रव की पुनरावृत्ति करता है तो उसे दंड देने का प्रावधान विधि करती है। यदि कोई जीवन के लिए संकटपूर्ण संक्रामक रोग के प्रति लापरवाही रखता है या द्वेषपूर्ण तरीके से ऐसा कार्य करता है तो उसे दंड का भागी माना गया है (धारा 269)। लोक स्वास्थ्य की ही दृष्टि से खाद्य पदार्थ में मिलावट करने पर, मिलावट वाला खाद्य पदार्थ बेचने पर, दवाइयों में मिलावट करने पर, उन्हें बेचने पर, नकली दवाइयां बेचने पर, जल स्त्रोतों को दूषित करने पर, वायुमंडल को जानबूझकर दूषित करने पर, लापरवाही से वाहन और जलयान को चलाने, जैसे कार्य भी अपराधिक श्रेणी में रखे गए है (धारा 272-275, 277-278)। इसी तरह अग्नि अथवा ज्वलनशील पदार्थ के सम्बन्ध में उपेक्षापूर्ण आचरण करने पर, मानव जीवन को संकट पहुंचाने वाले विस्फोटक पदार्थों के बारे में उपेक्षापूर्ण रवैया रखने पर, मशीनों के सम्बन्ध में तथा किसी निर्माण को गिराने या उसकी मरम्मत में जानबूझकर लापरवाही रखने पर, जीव-जन्तुओं के प्रति लापरवाही रखने पर भी व्यक्ति को अपराधी मानते हुए दंड का प्रावधान किया गया है (धारा 285-289)। सार्वजनिक जीवन में ही शालीनता को बनाए रखने के लिए अश्लील साहित्य को बेचना, तरुण व्यक्तियों को अश्लील वस्तुओं को बेचना अथवा भाड़े पर देना अथवा उनके समक्ष प्रदर्शित करना, सार्वजनिक स्थल पर अश्लील संगीत चलाना अथवा अश्लील कार्य करना, अनाधिकृत लॉटरी चलाने जैसे कृत्य को दंडनीय अपराध माना गया है (धारा 292-294)।

भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। इसी धर्मनिरपेक्षता को बनाए रखने के लिए दंड संहिता धर्म सम्बन्धित अपराधों का भी उल्लेख करती है [31]। किसी वर्ग विशेष के धार्मिक भावनाओं को आहत करने के उद्देश्य से उनके पूजा स्थल को क्षति पहुंचाना, धर्म विशेष के प्रति किसी भी माध्यम से विद्वेषपूर्ण कार्य करना, किसी धार्मिक आयोजन में बाधा डालना, अंतिम क्रिया स्थल (श्मशान/कब्रिस्तान) पर शव के साथ छेड़छाड़ अथवा अन्य किसी प्रकार का अनैतिक कार्य करना आदि ऐसे कार्य हैं जिन्हें दंडनीय अपराध माना गया है (धारा 295-297)।

मानव शरीर की गरिमा को देखते हुए दंड विधान यह प्रावधान करता है कि यदि किसी के शरीर को मृत्यु के उद्देश्य से क्षति पहुंचाने का प्रयास होता है अर्थात किसी का वध होता है, तो इसके लिए विशेष दंड का प्रावधान किया गया है (धारा 299, 302)। विधि यह भी स्पष्ट करती है कि यदि बिना उद्देश्य अर्थात अनजाने में भी किसी के शरीर को क्षति पहुँचती है (वध होता है), तो उसे भी अपराध ही कहा जाएगा (धारा 304)। सामाजिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विधि में दहेज हत्या, अल्पायु व्यक्तियों, मानसिक बीमारों, आदि को आत्महत्या के लिए उकसाने पर, हत्या का प्रयास करने जैसे कृत्यों को दंडनीय बनाया गया है (धारा 304, 05)। आत्महत्या का प्रयास करना, ठगी करना भी अपराधिक कार्य कहलाता है (धारा 306, 310)। सामाजिक संदर्भों में ही गर्भपात करना, स्त्रियों की सहमती के बिना जबरन गर्भपात कराना, गर्भपात से स्त्री की मृत्यु को अपराधिक कार्य माना गया है (धारा 312)। इसी तरह किसी बच्चे को जन्म से पहले मारने, या जन्म के पश्चात मारने का कार्य करना भी दंडनीय अपराध घोषित किया गया है। कानून इस बात के लिए भी बाध्य करता है कि किसी शिशु (12 वर्ष से कम) का परित्याग करना अथवा उसकी जान को खतरे में डालना, जन्म से पूर्व अथवा पश्चात शिशु की मृत्यु होने पर उसके शरीर को को गुप्त रखना अपराध है (धारा 313-318)। मानव अंग की तस्करी न हो, इसके लिए भी विधि यह प्रावधान करती है कि किसी व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा पहुंचाना, अंग शैथिल्य करना (जिसे उपहति कहते है) अपराध में आता है (धारा 319, 320)। सम्पत्ति पाने के लिए किसी को अवैध कार्य कराने के लिए मजबूर करना, किसी को अपराध स्वीकारने (चाहे वह निर्दोष हो) के लिए शारीरिक रूप से प्रताड़ित करना, किसी लोकसेवक को उसके कर्त्तव्यों के निर्वहन से रोकने के लिए उसे प्रताड़ित करना भी कानून के अनुसार दंडनीय माना गया है (धारा 324-332)। उतावलेपन अथवा उपेक्षा से किए गए कार्य द्वारा किसी के जीवन को संकट में डालना भी अपराध की श्रेणी में ही आता है (धारा 336)। विधि के द्वारा विभिन्न माध्यमों से यह भी स्पष्ट किया गया है कि किसी भी प्रकार का बल करना, हमला करना, लोकसेवकों पर बल प्रयोग अथवा हमला करना, स्त्री लज्जा भंग करने के उद्देश्य से उस पर हमला करना या बल प्रयोग करना, किसी का अनादर करने के उद्देश्य से अथवा किसी की सम्पत्ति चुराने के उद्देश्य से हमला करना या अपराधिक बल प्रयोग करना भी दंडनीय अपराध होता है (धारा 349, 351, 353- 356)।

विधी द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में किए जाने वाले अपहरण को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि भीख मांगने के उद्देश्य से अपहरण करना या बच्चों को विकलांग बनाना, हत्या करने के उद्देश्य से अपहरण करना, फिरौती, विवाह के लिए किसी का अपहरण करना दंडनीय अपराध की श्रेणी में आता है (धारा 363-366)। किसी लड़की को जबरन किसी अन्य के साथ सम्भोग हेतु बाध्य करना, विदेशी लड़की का आयात करना, दास बनाने के उद्देश्य से अपहरण करना, दास के रूप में किसी को खरीदना और बेचना, वेश्यावृत्ति के लिए लड़कियों को बेचना अथवा

खरीदना, विधि विरुद्ध किसी व्यक्ति से बलात् श्रम कराना भी कानूनी तौर पर अपराध ही हैं (धारा 366-374)। विधि द्वारा यौन अपराध को भी स्पष्ट किया गया है। कानून में स्त्री की इच्छा, सहमति के विरुद्ध बलात संग को, लोकसेवक द्वारा उसकी अभिरक्षा में रही किसी स्त्री के साथ सम्भोग करना तथा ऐसी ही अन्य स्थितियों को अपराध घोषित किया गया है (धारा 375-376)।

दंड संहिता सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी किए गए अपराधों को स्पष्ट करती है [32]। कानून में चोरी को स्पष्ट किया गया है (धारा 378)। साथ ही सामान्य चोरी, निवास गृह में चोरी, वध या भय दिखाने के पश्चात चोरी करना, ऐसी ही कुछ परिस्थितियां हैं, जिन्हें अपराधिक कृत्य माना गया है। (धारा 380-382) इसी तरह विधि में जबरन वसूली को भी अपराध माना गया है (धारा 383)। किसी को मृत्यु का भय दिखाना, अन्य किसी प्रकार का दंड देने का भय दिखाना, किसी पर अपराध का आरोप लगाने का भय दिखाना आदि प्रयासों द्वारा जबरन वसूली के प्रयासों को कानून में रेखांकित करते हुए इन्हें दंडनीय बनाया गया है (धारा 386-389)। विधि लूट और डकैती को भी स्पष्ट करते हुए इनके सम्बन्ध में दंड का प्रावधान तो करती ही है साथ ही लूट अथवा डकैती के दौरान ह्त्या या प्रताड़ना जैसे कृत्यों को भी दंडनीय बनाती है (धारा 390-396)। लूट या डकैती में घातक हथियारों के प्रयोग, लूट अथवा चोरी के लिए टोली (समूह) बनाना, इस प्रयोजन से एकत्रित होना आदि सभी कृत्यों को अपराध की श्रेणी में लाते हुए इनके सम्बन्ध में दंड के प्रावधान किए गए हैं (धारा 398-402)। बेईमानी से किसी की सम्पति का हरण करना या उसका दुरूपयोग करना भी अपराध कहलाता है, जिसके लिए विधि द्वारा परिस्थितियों के अनुसार दंड का प्रावधान किया गया है (धारा 403)। इसी तरह विधि 'छल' को भी परिभाषित करते हुए विभिन्न माध्यमों से किए जाने वाले छल के परिणामस्वरूप दिए जाने वाले दंड को भी स्पष्ट करती है (धारा 415)। लोक अथवा व्यक्ति को हानि पहुंचाने को कानूनी भाषा में 'रिष्टि' कहा गया है। विधि द्वारा रिष्टि के तहत होने वाले नुकसान को रेखांकित करते हुए नुकसान के अनुरूप सजा का प्रावधान किया गया है (धारा 425)। इसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति की रिष्टि के साथ ही साथ सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुंचाते हुए रिष्टि करना भी शामिल है (धारा 427-433)। दंड संहिता में अपराधिक अतिचार को स्पष्ट करते हुए कहा कि किसी अन्य के कब्जे वाली सम्पत्ति (घर) में अपराध करने के उद्देश्य से यदि कोई प्रवेश करता है तो यह अपराधिक अतिचार कहलाता है (धारा 441)। इस अतिचार को गृह अतिचार, प्रच्छन्न गृह अतिचार, रात्रे प्रच्छन्न गृह अतिचार, गृह भेदन आदि श्रेणियों में विभक्त करते हुए सभी के लिए अलग-अलग दंड के प्रावधान किए गए हैं (धारा 442-445)।

जालसाजी पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से दंड संहिता में दस्तावेजों और सम्पत्ति चिन्हों संबंधी अपराधों का भी उल्लेख किया गया है [33]। कपटपूर्ण उद्देश्य से जाली दस्तावेज (लिखित अथवा

इलेक्ट्रोनिक) बनाना (पूर्ण अथवा आंशिक), कूट-रचना कहलाती है (धारा 463)। यह कूट-रचना न्यायालयों के अभिलेखों या लोक-रजिस्ट्री, मूल्यवान प्रतिभूति, वसीयत आदि पर भी लागू होती है (धारा 464)। कई बार छल में दूसरों की ख्याति को नुकसान पहुंचाने के प्रयोजन से भी कूट रचना की जाती है। विधि द्वारा इन सभी को दंडनीय बनाया गया है। कानून के अनुसार जो चिन्ह किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति को बताती है, ऐसे चिन्हों को सम्पत्ति चिन्ह कहा जाता है। ऐसे सम्पत्ति चिन्हों का दुरूपयोग करना, मिथ्या सम्पत्ति चिन्हों का उपयोग, दूसरों के द्वारा प्रयुक्त सम्पत्ति चिन्हों का कूट-करण, लोकसेवकों द्वारा उपयोग में लिए गए चिन्हों का कूट-करण, सम्पत्ति चिन्हों के दुरूपयोग के लिए उपकरणों का निर्माण, नुकसान करने के उद्देश्य से सम्पत्ति चिन्हों को बिगाड़ना आदि को दंडनीय माना गया है (धारा 481-488)। करेंसी नोटों या बैंक नोटों का कूट-करण करना, ऐसे कूट-रचित करेंसी नोटों या बैंक नोटों को असली के रूप में उपयोग में लाना, ऐसे नोटों को कब्जे में रखना, कूट-कर्ण हेतु उपकरण या सामग्री बनाना या कब्जे में रखना भी दंडनीय अपराध है (धारा 489 क-ड़)। विधि द्वारा सेवा-संविदाओं के भंग करने को भी अपराध कहा गया है। असहाय व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति और उनकी परिचर्या से जुड़ी संविदा को भंग करना, दूरस्थ स्थान पर सेवा करने की संविदा को भंग करना अपराध है (धारा 490-492)।

सामाजिक क्षेत्र में ही विधि द्वारा विवाह सम्बन्धी अपराधों को भी स्पष्ट किया गया है [34]। कानूनन कोई पुरुष किसी अन्य स्त्री से जो उसकी पत्नी न हो, उसके साथ सहवास करना अपराध में आता है, इसी तरह पति अथवा पत्नी के जीवन काल में पुनः विवाह करना, जानबूझकर विधि पूर्वक विवाह की उपेक्षा करते हुए कपटपूर्ण तरीके से विवाह करना, पर पुरुष की पत्नी के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखना अथवा उसे बहला-फुसला कर ले जाना सभी कृत्य दंडनीय अपराध माने गए हैं (धारा 493-498)।

किसी स्त्री के साथ उसके पति अथवा पति के नातेदार द्वारा जानबूझकर क्रूरता पूर्वक व्यवहार करना अथवा करवाना भी दंडनीय अपराध है (धारा 498-क)। किसी व्यक्ति की ख्याति को खंडित करने के उद्देश्य से किसी भी माध्यम से कोई ऐसा कार्य करे जो सामने वाले के मान-सम्मान को ठेस पहुंचाएं तो इसे मानहानि करना कहते हैं (धारा 499)। मानहानि पर तो दंड का प्रावधान है ही किन्तु मानहानि करने वाली बात अथवा विषय को प्रकाशित करवाना अथवा बेचना भी दंडनीय माना गया है (धारा 501-502)।

भारतीय दंड संहिता में उल्लेखित अपराध और उनके स्वरूपों को दंडनीय बनाया गया है। सजा के इन प्रावधानों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान दंड व्यवस्था के तहत मुख्यतः कारावास (आजीवन और साधारण), और जुर्माने का ही प्रावधान है। केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में मृत्यु दंड की भी व्यवस्था की गई है।

4. प्रासंगिकता

प्राचीन भारतीय समाज में, जैसा कि साहित्यों में उल्लेख है, प्रचलित अपराधों और उनसे जुड़े दण्ड की

यदि वर्तमान कालीन दण्ड व्यवस्था से तुलना करें तो इससे मुख्यतः दो संदर्भ स्पष्ट होते हैं -

1. प्रासंगिक हुए दण्ड, 2. अप्रासंगिक हुए दण्ड

प्रासंगिक हुए दण्ड - यह सर्वविदित है कि मौटे तौर पर जो अपराध आज होते हैं, वैसे ही अपराध प्राचीन काल में भी होते थे। इतना अवश्य है कि अपराध की तीव्रता, उसके प्रभावों, साधनों में परिवर्तन हुआ है। यहाँ उन अपराधों और उनसे जुड़े दण्ड का उल्लेख किया जा रहा है, जो सर्वकालिक प्रासंगिकता रखते हुए वर्तमान में भी विधि व्यवस्था के तहत अपना एक अहम स्थान रखते है।

पहले भी शासक विधि अथवा कानून से ऊपर नहीं होता था। उसके द्वारा गलती होने पर उसे भी दण्डित किया जा सकता था। वर्तमान में भी विधि को सर्वोपरी रखते हुए शासक हो या प्रजा, सभी को अपराध करने पर विधि के अधीन रखा गया है। पहले भी विधि और न्याय व्यवस्था में इस बात पर बल दिया जाता था कि दण्ड्य व्यक्ति दण्ड से मुक्त न हो और अदण्ड्य व्यक्ति दण्डित न हो। आज की विधि व्यवस्था में भी यह सिद्धांत प्रासंगिक बनाए रखते हुए, इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि किसी निर्दोष को सजा न हो जाए। प्राचीनकाल में अपशब्द कहना अथवा गाली-गलौच करना अपराध माना जाता था। धमकाने की प्रवृत्ति को भी अपराध ही समझा जाता। वर्तमान में भी वाक् पारुष्य की तरह शाब्दिक हिंसा अथवा गाली-गलौच अथवा धमकाना अपराध की श्रेणी में ही है और इसे रोकने के लिए दण्ड का प्रावधान ही किया गया है। यह बात उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल में जहां जातिगत श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए दण्ड की मात्रा का प्रावधान किया गया था। वहीं वर्तमान में जातीय समानता की भावना के आधार पर दण्ड की व्यवस्था की गई है। इसके तहत यदि निम्न समझी जाने वाली जाति के विरुद्ध कोई भी अपशब्द अथवा जाति-सूचक शब्द प्रयुक्त करता है तो यह दण्डनीय अपराध माना गया है।

दण्ड पारुष्य के तहत मारपीट और शारीरिक हिंसा को अपराध मानते हुए दण्ड का प्रावधान किया गया था। आधुनिक दण्ड विधान भी हर प्रकार की शारीरिक हिंसा को अपराध मानते हुए अपराध की प्रकृति के अनुरूप दण्ड की व्यवस्था करता है। जीवों के प्रति सम्मान रखते हुए पशुओं के प्रति की जाने वाली क्रूरता को दण्ड पारुष्य के तहत मानते हुए आर्थिक दण्ड का प्रावधान था। वर्तमान दण्ड विधान भी प्राणी मात्र के प्रति दया और सम्मान का भाव रखते हुए पशु हिंसा को दण्डनीय अपराध मानती है। वनस्पति और पर्यावरण के प्रति भी प्राचीन दण्ड विधान में संवेदनशीलता रखते हुए इनको किसी से भी क्षति पहुंचाना दण्डनीय अपराध माना गया है। आधुनिक दण्ड विधान भी विशेषकर पिछले तीन दशकों से पर्यावरण और वनस्पति के संरक्षण हेतु इनसे जुड़े अपराधों के लिए दण्ड के कई प्रावधान करता है। वर्तमान की न्याय और दण्ड व्यवस्था में चोरों अथवा अपराधियों का पता लगाने के लिए कई युक्तियाँ और उपाय देखने को मिलते हैं। ऐसे ही प्रावधान प्राचीन दण्ड विधान में भी नजर आते हैं। अपराध और अपराधी को पहचानने के लिए प्राचीन न्यायिक

प्रशासन के तहत गुप्तचर व्यवस्था का विशेष महत्व रहा है। यही गुप्तचर व्यवस्था वर्तमान में भी अपराधियों को पकड़ने के लिए प्रासंगिक नजर आती है।

वर्तमान समाज में जिस प्रकार सफेदपोश अपराधी और उनके अपराध अस्तित्व में हैं। उसी प्रकार प्राचीन समाज में भी सफेदपोश अपराधों और उनसे जुड़े दण्ड देखें जा सकते हैं। प्राचीन दण्ड विधान में यह भी देखने को मिलता है कि कुछ वस्तुओं के निर्माण और विक्रय पर राज्य का एकाधिकार रखा गया और यदि कोई उसका उल्लंघन करता तो उसके लिए दण्ड का प्रावधान था। वर्तमान में भी इसी भावना के अनुरूप राज्य के एकाधिकार और प्रभुत्व का दमन करने पर अपराधी को दंडित किया जाता है। फर्जी चिकित्सकों, मुद्रा से जालसाजी करने वालों, जुआरियों, सट्टेबाजों आदि के सम्बन्ध में प्राचीन दण्ड विधान किसी न किसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था करता है। इन्हीं प्रवृत्तियों वाले व्यवहार को वर्तमान की दण्ड व्यवस्था में भी अपराध घोषित करते हुए उन्हें दण्डनीय बनाया गया है, समाज में नैतिकता और शुचिता को बनाए रखने के लिए इसे प्रासंगिक माना गया है। न्याय को प्रभावी बनाने के लिए साक्ष्यों (गवाहों) पर भी विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है। झूठे प्रमाणों और साक्ष्यों के साथ ही अन्याय करने वाले न्यायाधीशों को दण्ड का भागी माना गया है।

आत्मरक्षार्थ की गई हत्या प्राचीन विधान के तहत भी क्षम्य मानी गई है और वर्तमान व्यवस्था के तहत भी इसे उदारता के दृष्टिकोण से देखा जाता है। सामाजिक जीवन में नैतिकता की अभिवृद्धि के लिए स्त्री संग्रहण को गम्भीर अपराध माना गया है। स्त्रियों के साथ होने वाले व्यभिचार और अमानवीय व्यवहार को प्राचीन दण्ड विधान के साथ ही आधुनिक दण्ड विधान में भी निंदनीय और दण्डनीय अपराध माना गया है। प्राचीन साहित्यों में उल्लेखित दण्ड विधान के तहत राजद्रोह को गम्भीर अपराध माना गया है और इसके लिए कड़े से कड़ा दण्ड देने की बात कही गई है। वर्तमान दण्ड व्यवस्था भी राजद्रोह को अक्षम्य अपराध मानते हुए कठोर दण्ड का समर्थन करती है। प्राचीन भारत में धर्म सम्बन्धी अपराधों के प्रति उदार और सहिष्णुतापूर्ण दृष्टिकोण देखने को मिलता है। फिर भी कुछ धार्मिक अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था थी। वर्ण और जातिगत भेदभाव की धारणा ने कुछ वर्गों के लिए धार्मिक कृत्यों को निषेध करते हुए उन्हें दण्डनीय बनाया हैं। वर्तमान समाज में धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता का समर्थन तो किया गया है, किन्तु साम्प्रदायिक भावना, धार्मिक उन्माद, कट्टरता आदि के आधार पर होने वाले व्यवहार को अपराध माना गया है। साथ ही सभी जातियों, धर्मों और वर्गों को धार्मिक उपासना और स्वतंत्रता के समान अवसर दिए गए है। यदि इस समानता का उल्लंघन होता है तो वह दण्डनीय माना गया है।

प्राचीन दण्ड विधान भी गर्भपात को अपराधिक कृत्य मानते हुए उसके सम्बन्ध में अलग-अलग दण्डों का उल्लेख करते हैं। आधुनिक दण्ड व्यवस्था में भी गर्भपात को एक गम्भीर अपराध मानते हुए उसे दण्डनीय बनाया गया है। प्राचीन विधि-शास्त्रियों ने जन-स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरूक रहते हुए कुछ कृत्यों को दण्डनीय अपराध माना है। वर्तमान में भी दण्ड व्यवस्था के तहत जन स्वास्थ्य और

स्वच्छता के मद्देनजर बहुत से कृत्यों को उसकी प्रकृति के अनुरूप दण्ड़नीय माना गया है। न्याय सभी को मिलें और न्याय से सभी संतुष्ट हों, इसके लिए प्राचीन विधि व्यवस्था में अपील की व्यवस्था थी। निम्न न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अंतिम तौर पर राजा (शासक), जो कि अंतिम न्यायिक अधिकारी माना गया था, के समक्ष प्रार्थना की जा सकती थी। वर्तमान में भी उच्च न्यायालयों में अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील किए जाने का प्रावधान है।

अप्रासंगिक हुए दण्ड - प्राचीन दण्ड व्यवस्था, तत्कालीन मान्यताओं के अनुरूप थी। साहित्य में उल्लेखित व्यवस्था राजतंत्रीय है और राजतंत्रात्मक व्यवस्था में बहुत से दण्ड के प्रावधान ऐसे थे जो अमानवीय और क्रूर कहे जा सकते हैं। न केवल दण्ड के स्वरूप वरन् दण्ड की मात्रा में भी कई तरह की विविधताएं दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान दण्ड व्यवस्था और न्यायिक पहलुओं में अब ये प्राचीन व्यवस्थाएं अप्रासंगिक हो चुकी हैं, इसीलिए आधुनिक दण्ड व्यवस्था में इनको नकारते हुए कोई स्थान प्रदान नहीं किया गया है। संक्षेप में अप्रासंगिक हो चुकी ये व्यवस्थाएं अथवा प्रावधान निम्न हैं -

प्राचीन दण्ड विधान के तहत जातीय श्रेष्ठता की भावना को महत्व देते हुए क्रमशः उच्च से निम्न वर्ग में क्रमशः न्यून से अधिक दण्ड का प्रावधान था। जबकि आधुनिक दण्ड व्यवस्था में समानता और न्याय की पृष्ठभूमि पर सभी के लिए समान अपराध के लिए समान दण्ड की व्यवस्था की गई है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में समाज में निम्न समझे जाने वाले शूद्रों के द्वारा धार्मिक क्रियाओं और संस्कारों को संपादित करने पर भी दण्ड दिया जाता था। प्रायः ये कार्य एक वर्ग विशेष तक सीमित थे, जबकि एक वर्ग विशेष इस सन्दर्भ में वंचनाओं का शिकार थे। अब इसे पूर्णतः अप्रासंगिक बना दिया गया है। संविधान ने स्वतंत्रता और समानता के साथ जिस न्याय के आदर्श को स्वीकारा है, उसी के अनुरूप अब हम धर्म निरपेक्ष राष्ट्र हुए हैं और इसी धर्मनिरपेक्षता के तहत हर जाति और हर वर्ग को धार्मिक क्रिया करने की स्वतन्त्रता के साथ ही सभी को समान संरक्षण भी प्रदान किया गया है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में वाक् पारुष्य से जुड़े अपराध में अर्थदण्ड का विशेष प्रावधान था। इसी प्रकार के अपराध के लिए वर्तमान कालिक दण्ड व्यवस्था मुख्यतः कारावास (शारीरिक दण्ड) का प्रावधान करती है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में परिजनों और गुरुओं के प्रति निंदा को भी जिस रुप में अपराध मानते हुए दण्ड का प्रावधान किया गया था। वर्तमान में इस व्यवस्था को अप्रासंगिक बना दिया गया है। अंग-भंग प्राचीन दण्ड व्यवस्था का एक अहम भाग था। विभिन्न प्रकृति के अपराधों में शरीर के विभिन्न अंगों को काटने की रीत थी। मानवाधिकारों को महत्व देते हुए और व्यक्ति की गरीमा को ध्यान में रखते हुए हमारे यहाँ आधुनिक दण्ड व्यवस्था में इस प्रकार के दण्डों को अमानवीय मानते हुए पूरी तरह से नकार दिया गया है।

कुछ प्राचीन साहित्य दण्ड पारुष्य में भी अर्थदण्ड का प्रावधान करते है। यदि मारपीट में खून न निकले तो अर्थदण्ड देने का प्रावधान भी नजर आता है।

किन्तु आधुनिक दण्ड व्यवस्था में मारपीट और शारीरक हिंसा में अर्थदण्ड के स्थान पर पूर्णरूपेण शारीरिक दण्ड को प्राथमिकता से स्वीकारा गया है। प्राचीन दण्ड विधान पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में होने वाले अपराधों (हिंसा) पर अलग-अलग दण्ड का प्रावधान करता है, किन्तु वर्तमान दण्ड व्यवस्था में पशुओं के प्रति की जाने वाली प्रत्येक हिंसा को दण्डनीय (शारीरिक) माना गया है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में पशु अपराध के सम्बन्ध में दण्ड निर्धारण के लिए पशुओं को होने वाली पीड़ा को भी आधार माना गया है। पीड़ा की मात्रा के अनुरूप दण्ड देने की बात कही गई है। वर्तमान दण्ड व्यवस्था में इस तथ्य को अस्वीकार करते हुए, पशुओं पर की जाने वाली क्रूरता को अपराध मानते हुए समान दण्ड की व्यवस्था की गई है।

मृत्यु दण्ड के सम्बन्ध में देखें तो प्राचीन दण्ड विधान हत्या (वध) के अलावा चोरी और अन्य अपराधों में भी मृत्यु-दण्ड का प्रावधान देखने को मिलता है, किन्तु वर्तमान की दण्ड व्यवस्था में जघन्य अपराध अथवा राजद्रोह की परिस्थिति में ही मृत्युदण्ड की व्यवस्था की गई है। असमानता के एक अन्य आधार लैंगिक विभेदता को भी प्राचीन दण्ड व्यवस्था में देखा जा सकता है। समान अपराध पर पुरुष और स्त्री को अलग-अलग दण्ड देने की व्यवस्था की जाती है। कई मामलों में स्त्रियों के प्रति इन प्रावधानों में उदारता भी झलकती है। आधुनिक दण्ड विधान में यह लैंगिक विभेदता पूर्णतया समाप्त कर दी गई है। यदि योग्यता और लापरवाहीवश दुर्घटना में किसी कि मृत्यु हो जाए तो प्राचीन दण्ड विधान व्यवस्था के अनुसार वह मृत्युमारण न होकर चोरी का अपराध माना गया है। किन्तु आज की कानून व्यवस्था में इस बात का समर्थन न करते हुए दुर्घटना के कारणों के अनुरूप अपराध और दण्ड तय हैं।

कुछ प्राचीन शास्त्र स्त्रियों के प्रति संकीर्ण सोच रखते हुए उनके आचार-विचार और व्यवहार को बहुत मर्यादित करते हैं। इन मर्यादाओं की उल्लंघनाओं को उन्होंने दण्डनीय माना है। जबकि आधुनिक समाज में महिला की स्वतन्त्रता और समता को पुरुषों के समकक्ष रखते हुए महिलाओं को इन प्राचीन रुढियों एवं अतार्किक मर्यादाओं से मुक्त रखते हुए स्त्रियों को स्वतंत्र जीवन जीने का अवसर प्रदान किया है। प्राचीन दण्ड विधान मुख्यतः अवरोधक और निरोधक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही तय होते थे। अब इस उद्देश्य को भी ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता। वर्तमान की दण्ड व्यवस्था में मुख्यतः सुधारात्मक प्रवृत्ति को दण्ड का उद्देश्य बताया गया है। प्राचीन व्यवस्था में सरकार के अंग कार्यपालिका और न्यायपालिका में घनिष्ठ सम्बन्ध देखें जा सकते हैं। आम धारणा यह है कि इन सम्बन्धों के कारण न्यायिक प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। इसीलिए वर्तमान की व्यवस्था में शासक अर्थात् कार्यपालिका को न्यायपालिका से पूर्णतया पृथक कर दिया गया है। प्राचीन काल में न्याय के स्त्रोत के आधार के रूप में मुख्यतः धर्मशास्त्रों का विशेष महत्व था, वेद, स्मृतियां, उपनिषद् आदि के आधार पर एक 'परिषद' द्वारा स्पष्टीकरण करने की प्रथा थी। किन्तु वर्तमान में इन धर्मशास्त्रों के स्थान पर विधि की एक संहिता विधि विशेषज्ञों, नीति निर्माताओं आदि के सहयोग से निर्मित की गई है और इसी

आधार पर न्याय प्रदान किया जाता है। इस रूप में अब धर्मशास्त्र न्याय का मूलाधार नहीं रहें हैं। न्यायिक प्रक्रिया के तहत प्राचीन विधि में दिव्य प्रमाणों का प्रावधान देखने को मिलता है। जिसमे पानी में रहना, आग पर चलना आदि कृत्यों द्वारा खुद को निर्दोष साबित करने की प्रथा का उल्लेख है। आधुनिक काल में विज्ञान और तर्क को महत्व देते हुए इन सभी प्रमाणों को अप्रासंगिक बना दिया गया है।

सुझाव - प्राचीन न्याय व्यवस्था और वर्तमानकालिक न्याय व्यवस्था के उपरोक्त तुलनात्मक वर्णन से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक समय में समाज, हालात, अपराध आदि के अनुरुप कई दण्ड विधान आज भी उन्हीं मूल भावों को लिए हुए हैं। इन्हीं विधानों को हम प्रासंगिकता के संदर्भ में समझा सकते हैं। इसके विपरीत कई प्राचीन दण्ड विधान वर्तमान समय में अप्रासंगिक हो चुके हैं। फिर भी वर्तमान न्याय व्यवस्था में सुधार के लिए कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं, जो प्राचीन दण्ड व्यवस्था पर आधारित है। कुछ प्रमुख सुझाव निम्न प्रकार से हैं -

वर्तमान की न्यायिक और विधिक प्रणाली को अत्यधिक जटिल, व्ययसाध्य तथा विलम्बशील माना जाता है। इसीलिए कई बार यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई ऐसी प्रणाली या प्रक्रिया हो सकती है जो जन-साधारण को समुचित तथा सरल रूप से विधि का ज्ञान करा सके, तथा शीघ्र एवं स्वल्प व्यय के साथ न्याय दिला सके? इसके लिए आदर्श के रूप में हम प्राचीन न्याय और विधि व्यवस्था से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं, जहां न्याय प्रदान करने में विलम्ब नहीं होता था। प्राचीन न्याय-व्यवस्था में राजकीय कानूनों का सूक्ष्म ज्ञान होना अनिवार्य नही था, तब के न्याय को एक प्रकार से प्राकृतिक तथा स्वाभाविक न्याय कह सकते हैं, जिसके तहत वादी तथा प्रतिवादी स्वयं ही अपने पक्ष को प्रस्तुत करते थे, इससे वस्तुस्थिति का वास्तविक आकलन होने की संभावना अधिक थी। इस न्यायिक प्रक्रिया के निर्णय में भी विलम्ब नहीं होता था। इस प्रक्रिया में बिचौलिये (वकील आदि) का कोई स्थान नहीं था अतः भ्रष्टाचार की सम्भावना न्यूनतम थी, मुकद्दमों का व्यय भी बहुत कम होता था। वर्तमान में नीति निर्माताओं, विधि विशेषज्ञों, और न्यायिक प्रशासकों ने न्याय व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में, 'उपभोक्ता-अदालतों', न्यायाधिकरणों और लोक अदालतों का संचालन प्रारम्भ किया है। ये अदालतें प्राचीन पंचायत व्यवस्था का ही परिष्कृत रूप कही जा सकती है। इस व्यवस्था में मुकदमों की तुरंत सुनवाई के साथ ही निर्णय होकर जन-सामान्य समय और धन की बर्बादी से बचाया जा सकता है। अतः जरूरत इस बात की है कि न केवल प्राचीन विधि और न्याय-व्यवस्था का वास्तविक रूप यथा संभव स्वीकारा जाये वरन् प्रक्रियाओं के प्रति गम्भीरता को भी प्राथमिकता दी जाए।

प्राचीन दण्ड व्यवस्था के तहत शासक को भी उत्तरदायी बनाते हुए यह प्रावधान था कि यदि शासक चोर को पकड़ने में असमर्थ रहता तो वह पीड़ित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करता। वर्तमान दण्ड व्यवस्था में इस प्रकार का प्रावधान नजर नहीं आता है। यदि कानून चोर को पकड़ने में असमर्थ रहता है तो नुकसान

पीड़ित को ही होता है। पहले राज्य के नियमों के अनुसार व्यापारियों को राज्य द्वारा निर्धारित मूल्यों के अनुरुप ही वस्तुओं को बेचना होता था अन्यथा उसे दण्ड दिया जाता। यह पूरी तरह से समाजवाद का सूचक है। किंतु वर्तमान में इस संबंध में मिश्रित स्वरुप नजर आता है। कुछ वस्तुओं का मूल्य तो राज्य तय करता है। किंतु अधिकांश वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के लिए व्यापारी स्वतंत्र है। बाजार में गला काट प्रतिस्पर्धा देखने को मिलती है। अतः राज्य को इस दिशा में ठोस कदम उठाने चाहिए।

यदि इन सुझावों पर नीति निर्माता नजर डालें और वर्तमान की न्याय व्यवस्था को सुधारने में इन पर अमल करें तो यकिनन न केवल न्याय व्यवस्था सुदृढ़ होगी वरन् प्राचीन साहित्यों और उनमें उल्लेखित संस्कृति का भी संरक्षण और संवर्द्धन होगा। साथ ही संस्कृत साहित्यों की उपयोगिता भी प्रमाणित होगी।

संदर्भ सूची

[1] Elliott & Merril, *Social Disorganization*, Harper, New York, pp. 542-543, 1961

[2] Tappan, *Crime, Justice and Correction*, McGraw Hill, New York, pp. 15, 1960

[3] Halsbury, *Law of England*, Butterworth, UK, Vol. 9, pp. 232, 1974

[4] Barns, H. E., and N. K. Teeters, *New Horizons in Criminology*, Prentice-Hall, pp. 19, 1959

[5] Ferri, E., *Criminal Sociology*, Cambridge Scholars Publishing, pp. 108, 1917.

[6] Sutherland, E. H., *Principal of Criminology*, J. B. Lippincott Company, pp. 256, 1939.

[7] शुक्रनीति, 41

[8] नारद 15 / 1

[9] कात्यायन, 758

[10] गौतमधर्मसुत्राणि 3 / 5

[11] बृहस्पति 20 / 5

[12] मनु 8 / 267

[13] विष्णु 5 / 35 - 36

[14] गौतम 12 / 13

[15] नारद 15 / 4

[16] बृहस्पति 21 / 1 - 2

[17] कात्यायन 786

[18] मनु 8 / 279

[19] कात्यायन 784

[20] मनु 8 / 332

[21] कौटिल्य 4 / 10

[22] बृहस्पति 22 / 19

[23] कौटिल्य 4 / 86 / 11

[24] बाबेल, बसन्ती लाल, अपराधशास्त्र एवं दंडशास्त्र, इस्टर्न बुक कम्पनी, नई दिल्ली, 2013 पृ 154

[25] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 62

[26] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 73

[27] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 75

[28] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 78

[29] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 87

[30] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 118

[31] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 128

[32] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 163

[33] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 192

[34] शर्मा, संदीप, भारतीय दण्ड संहिता साधना पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ 207